संपादकीय

इन दिनों भारतीय शिक्षा परिदृश्य में काफी हलचल मची हुई है। केन्द्र में नई सरकार के आने के बाद शिक्षा में अनेक बदलाव किए जा रहे हैं। देश के जाने-माने शिक्षण संस्थानों या ज्ञान सृजन से जुड़ी संस्थाओं के शीर्षस्थ पदों पर व्यक्ति की योग्यता और विषय क्षेत्र में आधिकारिकता को दरकिनार करते हुए नियुक्तियों का होना, शिक्षार्थियों एवं बुद्धिजीवियों के सशक्त विरोध को अनसुना करते हुए सरकार का अपने फैसले पर अडे रहना, गुजरात के सरकारी स्कूलों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से संबद्ध और शिक्षा बचाओ आंदोलन के अगुवा दीनानाथ बत्रा द्वारा लिखी गई वैचारिक दुराग्रहों से परिपूर्ण और मतारोपण करने वाली पुस्तकों का लगाया जाना, शिक्षा के अधिकार कानून में कक्षा एक से आठ तक बच्चों को किसी कक्षा में नहीं रोकने के प्रावधान (नो डिटेंशन पॉलिसी) को बदलने की कवायद आदि ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें लेकर देश के शिक्षाविद् और बुद्धिजीवी शिक्षा के भविष्य को लेकर गहरी चिन्ता प्रकट कर रहे हैं।

शिक्षा के अधिकार कानून ने लम्बे अर्से से परीक्षा प्रणाली में बदलाव की मांग को वैधानिकता प्रदान करते हुए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के चिर-प्रतिक्षित प्रगतिशील विचार को सभी आरंभिक स्कूलों में अनिवार्य बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले सभी लोगों ने इस प्रावधान को सराहा लेकिन जबकि इसे पूरी तरह लागू करके भी नहीं देखा गया है, सरकार इसे बदलने पर आमादा है। सरकार जिस तरह शैक्षिक फैसले ले रही है और अपने फैसले के पक्ष में जो दलील पेश कर रही है, वे दिलचस्प हैं। इसकी एक बानगी इस उदाहरण में देखी जा सकती है। कुछ दिन पहले मुझे एक 'शिक्षा संवाद' में भागीदारी करने का मौका मिला। इस संवाद में शिक्षा सचिव के साथ तमाम शिक्षा अधिकारी भी मौजूद थे। शिक्षा संवाद में भागीदारी करने आए एक व्यक्ति ने सवाल उठाया, ''शिक्षा के अधिकार कानून में बच्चों को किसी भी कक्षा में नहीं रोकने के निर्णय को पलटकर सरकार परीक्षा प्रणाली को वापस लागू क्यों करना चाहती है? क्या ऐसा करके सरकार शिक्षा व्यवस्था की असफलता के दोष को बच्चों के सिर पर मढ़ने की कोशिश नहीं कर रही है? जबकि अभी तक सतत एवं व्यापक मूल्यांकन को सही तरीके से लागू करके देखा भी नहीं गया है।'' शिक्षा सचिव ने अपने वक्तव्य में कहा, ''सरकार ही नहीं बच्चों के माता-पिता भी परीक्षा प्रणाली को पुनः लागू करवाना चाहते हैं।'' शिक्षा संवाद में अपनी समस्याओं को लेकर देहात से आई महिलाओं से शिक्षा सचिव ने पूछा, ''माताजी यह बताओ कि बच्चों की परीक्षा होनी चाहिए कि नहीं?'' महिलाओं का जवाब था कि स्कूल में पढ़ाई होनी चाहिए और मास्टर नियमित आने चाहिएं। हालांकि यह जवाब सीधे-सीधे परीक्षाओं के होने या नहीं होने के बारे में नहीं था लेकिन फिर भी सरकार ने यह नतीजा निकाल लिया कि परीक्षा को पुनः शुरू करने की जरूरत है और परीक्षा परिणाम के आधार पर ही बच्चों को अगली कक्षाओं में क्रमोन्नत किया जाना चाहिए।

परीक्षा व्यवस्था को पुनः लागू करने के पीछे सरकार का तर्क है कि परीक्षा को समाप्त करने का असर स्कूल के प्रदर्शन पर पड़ा है और बच्चे सीख नहीं रहे हैं। बच्चों में सीखने की इच्छा खत्म हो रही है, इत्यादि। क्या बच्चों के नहीं सीखने या स्कूलों का प्रदर्शन खराब होने की वजह सिर्फ यही है कि कक्षा एक से आठ तक किसी कक्षा में बच्चों को नहीं रोका जाएगा? क्या इसके लिए पूरा तंत्र जिम्मेदार नहीं है, जिसकी शिक्षा की व्यवस्थाओं को सही तरीके से चलाने की जिम्मेदारी है? क्या बच्चों के सीखने को सुनिश्चित करना शिक्षा विभाग की जिम्मेदारी नहीं है? क्या हरेक शैक्षिक फैसले की बुनियाद यही होगी कि अधिकांश लोग क्या चाहते हैं?

यह मुद्दा सिर्फ राजस्थान का नहीं है। केन्द्र सरकार भी इसी दिशा में सोच रही है। केन्द्र सरकार ने भी केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की बैठक में यह फैसला ले लिया है और राज्य सरकारों से लिखित में उनकी राय मांगी है। जाहिर तौर पर सरकार अपने व्यवस्थागत ढांचे को बिना दुरुस्त किए अपने लिए मुफीद परंपरागत ढर्रे को बनाए रखना चाहती है। निश्चित तौर पर सरकार का यह फैसला शिक्षा में सुधार की कोशिशों को भारी नुकसान पहुंचाएगा। ◆

विकास